ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(11): 237-241
www.allresearchjournal.com
Received: 16-09-2019
Accepted: 19-10-2019

Prashant
Research Scholar, Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi, India

Correspondence Author:
Prashant
Research Scholar, Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi, India

न्यायमतानुसार शक्ति-स्वरूप

Prashant

शब्द को पद और पद से सम्बन्धित वस्तु को पदार्थ कहते हैं। पद तथा अर्थ के मध्य सम्बन्ध होता है अतः पद एवं पदार्थ परस्पर सम्बन्धी हैं। नैयायिकाचार्य विश्वनाथ के अनुसार 'पदेन सह पदार्थस्य सम्बन्धः'[1] अर्थात् पद के साथ पदार्थ का सम्बन्ध शक्ति कहलाता है। अतः कहा जा सकता है कि पद होता है अर्थ का सम्बन्धी तथा अर्थ होता है पद का सम्बन्धी। यह नियम है कि एक सम्बन्धी के ज्ञान से दूसरे सम्बन्धी का ज्ञान स्वतः होता है। [2] इस नियम के अनुसार पद का ज्ञान होने पर अर्थ का बोध होता है एवं अर्थ का ज्ञान होने पर पद का बोध होता है।

शक्ति को अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। यथा- शक्ति, सङ्केत, समय, अभिधा, इच्छा इत्यादि। सङ्केत के लिए न्याय-सूत्रों तथा वैशेषिक-सूत्रों में समय शब्द का प्रयोग किया गया है। आचार्य गौतम न्यायसूत्र में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध पर विचार करते हुए लिखते हैं कि शब्द तथा अर्थ का सम्बन्ध सामयिक अर्थात् साङ्केतित है। [3] वैशेषिक दर्शन में भी समय शब्द का प्रयोग मिलता है। [4]

आचार्य विश्वनाथ अपने ग्रन्थ कारिकावली की स्वोपज्ञवृत्ति न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में बताते हैं कि अमुक पद से अमुक अर्थ का बोध होना चाहिए, यह ईश्वरेच्छा शक्ति कहलाती है। [5] प्राचीन नैयायिकों के अनुसार शक्ति 'ईश्वरेच्छारूपा' है किन्तु 'ईश्वर-इच्छा' को नव्य-नैयायिक शक्ति न मानकर मात्र 'इच्छा' को ही शक्ति मानते हैं। ईश्वरेच्छा को शक्ति मानने पर अनेक समस्याएँ उपस्थित होती हैं। यथा यदि शब्द ईश्वरकृत नहीं है तो उनमें अर्थबोधन की शक्ति ईश्वरेच्छा कैसे सम्भव है? अन्य कठिनाई यह है कि पदार्थों के नये-नये नामकरण सामान्यतः होते रहते हैं, जिनमें ईश्वरीय-इच्छा की सम्भावना नहीं है। पिता द्वारा सन्तति के नामकरण में ईश्वरेच्छा की उद्भावना कैसे सम्भव है? इस प्रश्न का समाधान प्राचीन नैयायिक इस रूप में करते हैं कि शास्त्रों में वर्णित है

---

[1] शक्तिश्च पदेन सह पदार्थस्य सम्बन्धः। न्या. सि. मु., पृ. 5

[2] पदार्थयोर्वृत्तिरूपसम्बन्धज्ञाने सत्येव पदज्ञानमेकसम्बन्धिज्ञानं सत् पदार्थस्मारकम्, एकसम्बन्धिज्ञानमपरसम्बन्धिस्मारकमिति नियमात्। मु. सं., पृ. 194, 195

[3] सामयिकत्वाच्छब्दार्थसम्प्रत्ययस्य। न्या. सू., 2.1.55

[4] सामयिकः शब्दार्थप्रत्ययः। वै. सू., 7.2.20

[5] सा चास्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्यः इतीश्वरेच्छारूपा। न्या. सि. मु., पृ. 5

कि 11वें दिन पिता नामकरण करें। [6] यह शास्त्र-वाक्य ईश्वरेच्छा ही है। प्राचीन नैयायिकों के इस समाधान के अनुसार आधुनिक सङ्केतों तथा परिभाषा यथा व्याकरण में नदी सञ्ज्ञा इत्यादि [7] में एवं वैज्ञानिक आविष्कार यथा फोन, ब्लूटूथ इत्यादि नामों में ईश्वरेच्छा न होने से यहाँ शक्तिग्रह नहीं होना चाहिए। नव्यनैयायिक इसका समाधान करते हैं कि ईश्वर-इच्छा शक्ति न होकर मात्र 'इच्छा' ही शक्ति है। [8] इस सिद्धान्त से इच्छा नामकरण करने वाले किसी भी व्यक्त की होने से आधुनिक सङ्केतों में भी शक्तिग्रह की व्याख्या सम्भव है।

काव्यशास्त्रीयमत में शक्ति-स्वरूप

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में कहा है- 'स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते। [9] अर्थात् वह साक्षात् (सङ्केतित) अर्थ ही मुख्य अर्थ कहा जाता है, उस साक्षात् सङ्केतित अर्थ के विषय में शब्द की जो मुख्य वृत्ति या व्यापार है, वही अभिधा है। साक्षात्सङ्केतित अर्थ के लिए बिना किसी प्रकार की बाधा आदि के शब्द का मुख्य व्यापार अभिधावृत्ति कहलाती है। काव्यशास्त्र में अभिधा को ही शक्ति भी कहा जाता है।

शक्ति और सङ्केत का कहीं-कहीं समान रूप से व्यवहार किया जाता है किन्तु दोनों में भेद है। इस शब्द से यह अर्थ समझना चाहिए (अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्यः) इस प्रकार की मान्यता ही सङ्केत है। वह सङ्केत शक्ति का ग्राहक है। शक्ति या अभिधा वह व्यापार (वृत्ति) है, जिसमें साक्षात् सङ्केतित अर्थ का बोध होता है। यथा गो शब्द का सास्नादिमान् अर्थ में सङ्केतग्रह होने के पश्चात् गो शब्द से सङ्केतित गोरूप अर्थ की प्रतीति होती है। इस प्रतीति का जनक, शब्द का व्यापार अभिधा या शक्ति कहलाता है। अतः 'शक्ति' सङ्केत नहीं अपितु सङ्केतग्राह्य है। [10] साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने अभिधा, लक्षणा या व्यञ्जना को ही शक्ति या शब्दशक्ति कहा है- 'तिस्रः शब्दस्य शक्तयः। [11] इस प्रकार साहित्यदर्पण के रचयिता विश्वनाथ वृत्ति के स्थान पर शक्ति शब्द का प्रयोग करते हैं।

शक्तिग्रह किसमें?

मीमांसकों के अनुसार पद की शक्ति द्वारा जाति का ग्रहण होता है। जातिविशिष्ट व्यक्ति में शक्ति स्वीकार करने पर जाति में भी शक्ति का ग्रहण करना आवश्यक है। [12] विशिष्ट बुद्धि में विशेषण-विशेष्य के नियम से, विशेषण का ग्रहण किये बिना ज्ञान में विशिष्ट बुद्धि नहीं होती। [13] अतः जाति एवं व्यक्ति दोनों में शक्ति की कल्पना की अपेक्षा जाति में ही शक्ति माननी चाहिए। [14] जातिविशिष्ट-व्यक्ति में जातिविशेषण एवं व्यक्ति विशेष्य है। अभिधारूप शक्ति विशेषण मात्र के बोध में समर्थ होने से विशेष्य का बोध सम्भव नहीं है। अतः मीमांसक व्यक्ति में शक्ति स्वीकार करना निष्प्रयोजन मानते हैं। मीमांसक पद की शक्ति व्यक्ति अर्थ में नहीं मानते हैं। [15] व्यक्ति में शक्तिग्रह करने से दो दोष उत्पन्न होने की सम्भावना है। ये दो दोष हैं- व्यभिचार तथा आनन्त्यदोष।

व्यक्तिशक्तिवाद में व्यभिचार दोष

किसी नियम का उल्लंघन व्यभिचार कहलाता है। जैसे आनन्त्यदोष से बचने के लिए यह कहना कि प्रत्येक व्यक्तियों में अलग अलग संकेतग्रह न मानकर कुछ व्यक्तियों में संकेतग्रह मानकर शेष व्यक्तियों का संकेतग्रह के बिना ही बोध हो जाता है। ऐसा कहना नियम के विरुद्ध है क्योंकि कुछ व्यक्तियों के माध्यम से असंख्य व्यक्तियों का ग्रहण नहीं किया जा सकता है। यथा शिशु को गाय का बोध कराने के लिए माँ सङ्केतग्रह करवाती है कि यह गाय है। उस गो-विशेष के अतिरिक्त अन्य गायों का बोध शिशु को स्वतः बिना सङ्केतग्रह हो जाता है। यहाँ बिना सङ्केतग्रह अर्थबोध होने से व्यभिचार दोष आ जाता है।

---

[6] एकादशेऽहनि पिता नाम कुर्यादितीश्वरेच्छायाः सत्वात्। न्या. सि. मु., पृ. 8

[7] भगवदिच्छायास्तत्रावादित्यर्थः। तथा चोक्तं शक्तिवादे- "आधुनिकसङ्केतः परिभाषा" इति। कथं तर्हि नदीवृत्त्यादिपदाच्छाब्दबोध इति चेत्। मु. सं., पृ. 193

[8] नव्यास्तु ईश्वरेच्छा न शक्तिः, किन्त्विच्छैव। तेनाधुनिकसङ्केतेऽपि शक्तिरस्त्येवेत्याहुः। न्या. सि. मु., पृ. 8

[9] का. प्र., २.८, पृ. 53

[10] का. प्र., पृ. 53

[11] सा. द., 2.3, पृ. 26

[12] जातिविशिष्टायां व्यक्तौ शक्तिग्रहस्वीकारे जातावपि शक्तिग्रह आवश्यकः। मु. सं., पृ. 203

[13] विशिष्टबुद्धेर्विशेषणविषयत्वनियमात्, नागृहीतविशेषणा बुद्धिर्विशिष्टेषूपजायते इति न्यायात्। मु. सं., पृ. 203

[14] चोभयत्र शक्तिकल्पनापेक्षया जातावेव शक्तिः कल्पनीया। मु. सं., पृ. 206

[15] तत्र जातावेव शक्तिर्न तु व्यक्तौ, व्यभिचारानन्त्याच्च। न्या. सि. मु., पृ. 39

प्रत्येक तन्त्र के अनुसार पदों के अर्थग्रहण में शक्ति सहायक होती है। शक्तिग्रह किए बिना अमुक पद का अमुक अर्थ है यह बोध नहीं हो सकता। व्यक्ति अर्थ में शक्ति मानने पर, यथा- 'गो' इस पद की शक्ति गो=व्यक्ति अर्थ में लेने पर, पद प्रयुक्त करते ही एक व्यक्ति का बोध हो जाता है। तब अन्य सास्नालाङ्गूल..... आदि वाले गो व्यक्ति की उपस्थिति पर लोक में स्वतः बोध की स्थिति होती है किन्तु यहाँ बिना शक्तिग्रह किए अर्थबोध होने से व्यभिचार दोष उत्पन्न हो जाता है क्योंकि पद शक्ति के द्वारा ही अर्थ का ग्रहण करवाता है।

व्यक्तिशक्तिवाद में आनन्त्य दोष

किसी शब्द का जिस अर्थ में संकेतग्रह होता है, उससे उसी अर्थ का ज्ञान होता है। संकेतग्रह के बिना अर्थ की प्रतीति असंभव है। अतः व्यक्ति में संकेतग्रह मानने पर जिस व्यक्तिविशेष में संकेतग्रह हुआ है, उससे उस व्यक्ति विशेष की ही उपस्थिति होगी। भिन्न व्यक्तियों की प्रतीति के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न संकेतग्रह मानने पड़ेंगे। ऐसी स्थिति में अनन्त संकेतों की कल्पना की आवश्यकता होगी, जो संभव नहीं है, इसी को आनन्त्यदोष कहा जाता है। 'गो' पद की शक्ति 'गौः' व्यक्ति में मानने पर व्यभिचार दोष न हो इसके लिए प्रत्येक गौ व्यक्ति में पद की शक्ति माननी होगी। इस प्रकार अनन्त गो व्यक्तियों के अर्थबोध के लिए गो पद में अनन्त शक्तियाँ माननी होंगी। इस प्रकार व्यक्ति अर्थ में शक्तिग्रह करने से आनन्त्य दोष उत्पन्न होता है। [16]

मीमांसकों के जातिशक्तिवाद में सङ्केतग्रह

मीमांसकों के अनुसार जाति में शक्तिग्रह करने पर व्यक्ति का भान कैसे हो? [17] क्योंकि बिना शक्ति के अर्थबोध संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में मीमांसकों द्वारा समाधान रूप में तीन स्थितियाँ प्रस्तुत की जाती हैं:- (i) आक्षेप (ii) अर्थापत्ति (iii) लक्षणा।

1. आक्षेप वस्तुधर्म को कहते हैं। इसके अनुसार जाति निरधिष्ठान नहीं रहती। जाति सदैव समवाय सम्बन्ध से व्यक्ति में ही रहती है। इस प्रकार जाति अर्थ में शक्तिग्रह करने से व्यक्ति का भान स्वतः हो जाता है। [18]
2. अर्थापत्ति द्वारा जाति के बोध से व्यक्ति का ग्रहण स्वतः हो जाता है यथा- 'पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते' इस प्रकार के वाक्यों में देवदत्त के रात्रि भोजन का बोध स्वतः प्राप्त होता है।
3. पद की शक्ति जाति में मानने पर मुख्यार्थ बाध द्वारा लक्षणा से व्यक्ति का ग्रहण करते हैं। [19]

नैयायिकों द्वारा जातिशक्तिवाद का खण्डन

नैयायिकों के द्वारा पद की शक्ति व्यक्ति अर्थ में ली जाती है। मीमांसकों द्वारा स्वीकृत जाति शक्तिवाद का न्यायतन्त्र में खण्डन किया गया है। आक्षेप अथवा अर्थापत्ति से व्यक्ति का ग्रहण संभव नहीं है क्योंकि बिना शक्तिग्रह के अर्थबोध नहीं हो सकता। यदि व्यक्ति में शक्ति न मानकर जाति में शक्ति मानी है तो जाति का ही ग्रहण होगा व्यक्ति का नहीं। [20] जबकि लोक में ऐसा व्यवहार देखने को नहीं मिलता है। स्वयं मीमांसक भी पदों के द्वारा जाति रूप वाला अर्थ ही ग्रहण करते हैं। लक्षणा द्वारा शक्तिग्रह अतः संभव नहीं है क्योंकि मुख्यार्थबाध से पूर्व भी व्यक्ति का बोध पद से स्वतः हो जाता है। [21]

नैयायिकों द्वारा व्यक्तिशक्तिवाद के दोषों का निराकरण

नैयायिकों द्वारा व्यक्ति-अर्थ में पद की शक्ति मानने पर आनन्त्य दोष अथवा व्यभिचार दोष नहीं उत्पन्न होता क्योंकि सकल व्यक्तियों में एक ही शक्ति स्वीकार की जाती है। सकल व्यक्तियों में एक ही शक्ति स्वीकार करने में नियामक है- उनका प्रकार। [22] जैसे गो पद की शक्ति सकल गो व्यक्तियों में गोत्व प्रकार होने के कारण स्वीकार की जाती है। यदि गो पद में शक्तिग्रह से शक्य गो व्यक्ति है, तब व्यक्ति में शक्ति है। यदि शक्तिग्रह से शक्य गोत्व प्राप्त होता है तब गोत्व प्रकार वाला पदार्थ स्मरण और शाब्दबोध नहीं होगा क्योंकि शाब्दबोध स्थल में प्रकार सदैव समान रहना चाहिए। शक्तिज्ञान समान प्रकार का होने पर ही पदार्थ स्मरण और शाब्दबोध के प्रति हेतु होगा। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार समान प्रकार वाला

16 सकलव्यक्तिषु शक्तिस्वीकारे व्यक्तिनामानन्त्याच्छक्तीनामानन्त्यम्। मु. सं., पृ. 207

17 केचित्- मीमांसकाः, शक्तिं विना- व्यक्तौ शक्त्यस्वीकारे। मु. सं., पृ. 207

18 व्यक्तिं विना जातिभानस्यासंभवाद् व्यक्तेरपि भानमिति केचित्। मु. सं., पृ. 207

19 व्यक्तौ न शक्ति किन्तु लक्षणैव। मु. सं., पृ. 207

20 शक्तिं विना व्यक्तिभानानुपपत्तेः। मु. सं., पृ. 207

21 न च व्यक्तौ लक्षणा अनुपपत्तिप्रतिसन्धानं विनापि व्यक्तिबोधात्। मु.सं पृ. 207

22 गोत्वादिरेव अनुगमकत्वाद्- मु. सं., पृ. 208

होने पर ही शक्तिज्ञान पदार्थ स्मरण के प्रति हेतु होता है एवं समान प्रकार वाला ही पदार्थ स्मरण शाब्दबोध के प्रति हेतु होता है। [23]

यदि गोत्व में शक्ति मानेंगे तब शक्यतावच्छेदक गोत्वत्व होगा। यह गोत्वत्व जाति न होकर सखण्डोपाधि है। सखण्डोपाधि को खण्डों में विभक्त किया जा सकता है। गोत्वत्व वस्तुतः सास्ना, लाङ्गूल, ककुद, खुर इत्यादि रूप वाला गो ही है। इस प्रकार शक्यतावच्छेदक में सभी गो व्यक्तियों का प्रवेश हो जाने से गौरवदोष होता है। [24]

न्यायदर्शन में पद की शक्ति जाति में न मान कर व्यक्ति में ही ग्रहण की जाती है, [25] यह व्यक्ति जातिविशिष्ट है। संस्थान आदि से व्यङ्ग्य जाति है। [26] अवयव संस्थान ही आकृति है। [27] द्रव्य, गुण, कर्म व्यक्ति हैं। [28] न्यायसूत्र में व्यक्ति, आकृति और जाति को पदार्थ कहा है। [29] जाति व्यक्ति और आकृति में एक शक्ति मानने के कारण यहाँ पदार्थ शब्द एकवचनान्त है। [30] न्यायसूत्र में शब्दार्थों का गौण-प्रधानभाव सूचित नहीं होता है। [31] तथापि प्रयोगस्थल में कहीं पर जाति का प्राधान्य होता है और व्यक्ति का गौणभाव। यथा 'गौर्न पदा स्प्रष्टव्येति' यहाँ सभी गायों के प्रति कथन होने से जाति का प्राधान्य है। [32] किन्हीं प्रयोगस्थलों में व्यक्ति का प्राधान्य और जाति का गौणभाव होता है। यथा 'गां मुञ्च' यहाँ किसी विशिष्ट गाय के प्रति कथन होने से व्यक्ति का प्राधान्य है। [33]

नैयायिकों के मत में जातिविशिष्ट व्यक्ति में शक्ति स्वीकार की गयी है। जिन अर्थों में सामान्य (जाति) का ग्रहण सम्भव नहीं है, वहाँ मात्र व्यक्ति में ही शक्तिग्रह होता है। यथा- आकाशादि में जाति नहीं होती अतः आकाश पद से आकाश व्यक्ति का ग्रहण होता है। आकाशत्व जाति असम्भव होने से इसका बोध नहीं होता। इसी बात को न्यायमञ्जरीकार जयन्तभट्ट ने विवेचित किया है। [34]

आकृतिवाद

कुछ दार्शनिकों ने पद का अर्थ आकृति माना है। इनके अनुसार व्यक्ति के अवस्थान की सिद्धि में आकृति की अपेक्षा होती है। [35] किसी भी व्यक्ति के अवयवों तथा अवयवों का जो संस्थानविशिष्ट है, वही आकृति है। इसी से हम निष्कर्ष तक पहुँच पाते हैं कि अमुक व्यक्ति मनुष्य है या गौ है। प्राचीन नैयायिक आकृति को पद के अर्थ में शामिल करते हैं। उनके मत में जब कोई पद बोला जाता है तब श्रोता को उस पद से व्यक्ति, आकृति, जाति इन तीनों का ज्ञान हो जाता है। न्यायसूत्रकार व्यक्ति, जाति और आकृति को मिलाकर ही पदार्थ मानते हैं। जैमिनि ने आकृति तथा जाति को एक ही माना है।

सन्दर्भग्रन्थसूची –

1. आप्टे, विनायक गणेश, न्यायसूत्राणि, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुणे, 1922.
2. शर्मा, महादेव, वैशेषिकदर्शनम्, व्यास प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1991.
3. शास्त्रि, पञ्चानन भट्टाचार्य, भाषा-परिच्छेद (न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीसङ्ग्रह टीका सहित), श्री सतीनाथ भट्टाचार्य, कलकत्ता, 1884.
4. शास्त्री, डॉ. दयाशङ्कर, न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (शब्दखण्डम्)-विश्वनाथ पञ्चानन भट्टाचार्य, सुरभारती प्रकाशन, कानपुर, 1989.
5. शास्त्री, शालिग्राम, साहित्यदर्पण-विश्वनाथ, नवम संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977.
6. शास्त्री, श्रीनिवास, काव्यप्रकाश-मम्मट, साहित्य भण्डार, मेरठ, उत्तर प्रदेश, 1970

23 समानप्रकारकत्वेन शक्तिज्ञानस्य पदार्थस्मरणं प्रति हेतुत्वादित्येका योजना। समानप्रकारकत्वेन पदार्थस्मरणस्य शाब्दबोधं प्रति हेतुत्वादित्यपरा योजना। मु. सं., पृ. 208

24 तथा च गोव्यक्तिनां शक्यतावच्छेदकेऽप्रवेशात्तथैव गौरवम्, मु. सं., पृ. 208

25 शक्तिर्जात्याकृतिविशिष्टव्यक्तौ विश्राम्यतीति। मु.सं., पृ. 209

26 जातिः संस्थानादिव्यङ्ग्यानुवृत्तव्यावृत्त- प्रत्ययजनिका गोत्व-घटत्वादिः। मु. सं., पृ. 209

27 आकृतिरवयवसंस्थानमिति। न्यायभाष्यकारादयः। मु. सं., पृ. 209

28 व्यक्तिस्तु द्रव्यगुणकर्माणि। मु. सं., पृ. 209

29 न्या. सू., 2.2.66

30 त्रिष्वेकशक्तेर्लाभार्थमेकवचनम्। मु. स., पृ. 209

31 सौत्रतु शब्देन शब्दार्थानां गुणप्रधानभाव-नियमो नास्तीति सूच्यते। मु. सं., पृ. 209

32 क्वचित् प्रयोगे जातेः प्राधान्यं व्यक्तेरङ्गभावः। यथा गौर्न पदा स्प्रष्टव्येति सर्वगवीषु प्रतिषेधो गम्यते। मु. स., पृ. 209

33 क्वचिद् व्यक्तेः प्राधान्यं जातेरङ्गभावः। यथा गां मुञ्चेति नियतां काञ्चिद् व्यक्तिमुद्दिश्य प्रयुज्यते। मु. सं., पृ. 209

34 न्यायमञ्जर्याम्- येषामर्थेषु सामान्यं न सम्भवति तैः पुनः। उच्यते केवला व्यक्तिराकाशादिपदैरिव॥ मु. सं., पृ. २०९

35 आकृति- तदपेक्षत्वात् सत्वव्यवस्थानसिद्धेः। न्या. सू. 2.2.64

7. सिंह, पं. स्वामिगोविन्द, न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (भाषाटीकासमेता), श्रीवेङ्कटेश्वरमुद्रणालय, काशी, 1957.
8. Jha, Ujjwala, A Primer of Navya Nyaya Language and Methodology, The Asiatic Society, Kolkata, 2004.